सनातन धर्म के 16 संस्कार

संस्कार शब्द का मूल अर्थ है, 'शुद्धीकरण'। मूलतः संस्कार का अभिप्राय उन धार्मिक कृत्यों से था । उसके शरीर, मन और मस्तिष्क को पवित्र करने के लिए किए जाते थे, किन्तु संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति में अभीष्ट गुणों को जन्म देना भी था। संस्कारों के द्वारा मनुष्य अपनी सहज प्रवृतियों का पूर्ण विकास करके अपना और समाज दोनों का कल्याण करता था। ये संस्कार इस जीवन में ही मनुष्य को पवित्र नहीं करते थे, अपितु उसके पारलौकिक जीवन को भी पवित्र बनाते थे।

सनातन धर्म में व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक 16 कर्म अनिवार्य बताए गए हैं। इन्हें 16 संस्कार कहा जाता है। इनमें से हर एक संस्कार एक निश्चित समय पर किए जाने का विधान है। कुछ संस्कार तो शिशु के जन्म से पूर्व ही कर लिए जाते हैं।

संस्कारों के संबंध में आद्य गुरु शंकराचार्य ने कहा है-

संस्कारो हि नाम संस्कार्यस्य गुणाधानेन वा स्याद्योषाप नयनेन वा ॥

-ब्रह्मसूत्र भाष्य 1/1/4

अर्थात व्यक्ति में गुणों का आरोपण करने के लिए जो कर्म किया जाता है, उसे संस्कार कहते हैं।

संस्कार विधि में लिखा है-

जन्मना जायते शुद्रऽसंस्काराद्विज उच्यते ।

अर्थात- जन्म से सभी शुद्र होते हैं और संस्कारों द्वारा व्यक्ति को द्विज बनाया जाता है।

संस्कार ही मनुष्य को सभ्यता का हिस्सा बनाए रखते हैं।

वेदों के अलावा गृहसूत्रों में संस्कारों का उल्लेख मिलता है। स्मृति और पुराणों में इसके बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है।

कर्म के संस्कार- हिंदू दर्शन के अनुसार, मृत्यु के बाद मात्र यह भौतिक शरीर या देह ही नष्ट होती है, जबकि सूक्ष्म शरीर जन्म-जन्मांतरों तक आत्मा के साथ संयुक्त रहता है। यह सूक्ष्म शरीर ही जन्म-जन्मांतरों के शुभ-अशुभ संस्कारों का वाहक होता है। ये संस्कार मनुष्य के पूर्वजन्मों से ही नहीं आते, अपितु माता-पिता के संस्कार भी रज और वीर्य के माध्यम से उसमें (सूक्ष्म शरीर में) प्रविष्ट होते हैं, जिससे मनुष्य का व्यक्तित्व इन दोनों से ही प्रभावित होता है। बालक के गर्भधारण की परिस्थितियां भी इन पर प्रभाव डालती हैं।

ये संस्कार ही प्रत्येक जन्म में संगृहीत (एकत्र) होते चले जाते हैं, जिससे कर्मों (अच्छे-बुरे दोनों) का एक विशाल भंडार बनता जाता है। इसे संचित कर्म कहते हैं। इन संचित कर्मों का कुछ भाग एक जीवन में भोगने के लिए उपस्थित रहता है और यही जीवन प्रेरणा का कार्य करता है। अच्छे-बुरे संस्कार होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में अच्छे-बुरे कर्म करता है। फिर इन कर्मों से अच्छे-बुरे नए संस्कार बनते रहते हैं तथा इन संस्कारों की एक अंतहीन श्रृंखला बनती चली जाती है, जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

संस्कार कितने हैं ?

गौतम स्मृति शास्त्र में 40 संस्कारों का उल्लेख है। कुछ जगह 48 संस्कार भी बताए गए हैं। महर्षि अंगिरा ने 25 संस्कारों का उल्लेख किया है।

वर्तमान में महर्षि वेदव्यास स्मृति शास्त्र के अनुसार 16 संस्कार प्रचलित हैं, उसके अनुसार-

गर्भाधानं पुंसवनं सीमंतो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेअन्नाशनं वपनक्रिया:।।
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारंभक्रियाविधि:। केशांत स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रह:।।
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्कारा: षोडश स्मृता:।

(व्यासस्मृति 1/13-15)

संस्कारों से हमारा जीवन बहुत प्रभावित होता है। संस्कार के लिए किए जाने वाले कार्यक्रमों में जो पूजा, यज्ञ, मंत्रोच्चारण आदि होता है, उसका वैज्ञानिक महत्व भी होता है। इन 16 संस्कारों –

1- गर्भाधान संस्कार

हमारे शास्त्रों में मान्य सोलह संस्कारों में गर्भाधान पहला है। गृहस्थ जीवन में प्रवेश के उपरान्त प्रथम कर्त्तव्य के रूप में इस संस्कार को मान्यता दी गई है। गार्हस्थ्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तानोत्पत्ति है। उत्तम संतति की इच्छा रखनेवाले माता-पिता को गर्भाधान से पूर्व अपने तन और मन की पवित्रता के लिये यह संस्कार करना चाहिए। वैदिक काल में यह संस्कार अति महत्वपूर्ण समझा जाता था।

यह ऐसा संस्कार है जिससे हमें योग्य, गुणवान और आदर्श संतान प्राप्त होती है। यह वैज्ञानिक स्तर पर भी साबित किया जा चुका है। महर्षि चरक ने कहा है कि मन का प्रसन्न और पुष्ट रहना गर्भधारण के लिए आवश्यक है इसलिए स्त्री एवं पुरुष को हमेशा उत्तम भोजन करना चाहिए और सदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिए। गर्भ की उत्पत्ति के समय स्त्री और पुरुष का मन उत्साह, प्रसन्नता से भरा होना चाहिए। उत्तम संतान प्राप्त करने के लिए सबसे पहले गर्भाधान-संस्कार करना होता है। माता-पिता के रज एवं वीर्य के संयोग से संतानोत्पत्ति होती है। यह संयोग ही गर्भाधान कहलाता है। गर्भस्थापन के बाद अनेक प्रकार के प्राकृतिक दोषों के आक्रमण होते हैं,

जिनसे बचने के लिए यह संस्कार किया जाता है। जिससे गर्भ सुरक्षित रहता है। विधिपूर्वक संस्कार से युक्त गर्भाधान से अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है।

2- पुंसवन संस्कार

पुंसवन संस्कार तीन महीने के पश्चात इसलिए आयोजित किया जाता है क्योंकि गर्भ में तीन महीने के पश्चात गर्भस्थ शिशु का मस्तिष्क विकसित होने लगता है। मां को अपने गर्भस्थ शिशु की ठीक से देखभाल करने योग्य बनाने के लिए किया जाता हैं, पुंसवन संस्कार के लाभ स्वस्थ और सुंदर गुणवान संतान प्राप्ति है। इस समय पुंसवन संस्कार के द्वारा गर्भ में पल रहे शिशु के संस्कारों की नींव रखी जाती है। मान्यता के अनुसार शिशु गर्भ में सीखना शुरू कर देता है गर्भस्थ शिशु के मानसिक विकास की दृष्टि से यह संस्कार उपयोगी समझा जाता है। हमारे मनीषियों ने सन्तानोत्कर्ष के उद्देश्य से किये जाने वाले इस संस्कार को अनिवार्य माना है। पुंसवन संस्कार का प्रयोजन स्वस्थ एवं उत्तम संतति को जन्म देना है। गर्भस्थ शिशु से सम्बन्धित इस संस्कार को शुभ नक्षत्र में सम्पन्न किया जाता है। विशेष तिथि एवं ग्रहों की गणना के आधार पर ही किया जाता हैं।

महाभारत में प्रह्लाद को देवर्षि नारद का उपदेश तथा अभिमन्यु को चक्रव्यूह प्रवेश का उपदेश इसी समय में मिला था। अत: माता-पिता को चाहिए कि वे इन दिनों विशेष सावधानी के साथ योग्य आचरण करें।

3- सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्तोन्नयन को सीमन्तकरण अथवा सीमन्त संस्कार भी कहते हैं। सीमन्तोन्नयन का अभिप्राय है सौभाग्य संपन्न होना। यह संस्कार गर्भ धारण के छठे अथवा आठवें महीने में होता है। इस संस्कार का फल भी गर्भ की शुद्धि ही है। इस समय गर्भ में पल रहा बच्चा सीखने के तत्पर हो जाता है। उसमें अच्छे गुण, स्वभाव और कर्म आएं, इसके लिए मां उसी प्रकार आचार-विचार, रहन-सहन और व्यवहार करती है। इस दौरान शांत और प्रसन्नचित्त रहकर माता को अध्ययन करना चाहिए। गर्भपात रोकने के साथ-साथ गर्भस्थ शिशु एवं उसकी माता की रक्षा करना भी इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। इस संस्कार के माध्यम से गर्भिणी स्त्री का मन प्रसन्न रखने के लिये सौभाग्यवती स्त्रियां गर्भवती की मांग भरती हैं।

4- जातकर्म संस्कार

शिशु का जन्म होते ही इस संस्कार को करने से गर्भस्त्रावजन्य संबंधी सभी दोष दूर हो जाते हैं। नवजात शिशु के नालच्छेदन से पूर्व इस संस्कार को करने का विधान है। इस दैवी जगत् से प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले बालक को मेधा, बल एवं दीर्घायु के लिये स्वर्ण खण्ड (सोने) से मधु एवं घृत अनामिका अंगुली से वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ चटाया जाता है। पिता यज्ञ करता है तथा मन्त्रों का विशेष रूप से उच्चारण के बाद बालक के बुद्धिमान,

बलवान, स्वस्थ एवं दीर्घजीवी होने की प्रार्थना करता है। घी आयु बढ़ाने वाला तथा वात व पित्तनाशक है और शहद कफनाशक है। सोने की चम्मच से शिशु को घी व शहद चटाने से त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) का नाश होता है। बालक का जन्म होते ही जातकर्म संस्कार को करने से शिशु के कई प्रकार के दोष दूर होते हैं। यह संस्कार विशेष मन्त्रों एवं विधि से किया जाता है।

5- नामकरण संस्कार

शिशु के जन्म के बाद 11 वें दिन नामकरण संस्कार किया जाता है। हमारे धर्माचार्यो ने जन्म के दस दिन तक अशौच (सूतक) माना है। इसलिये यह संस्कार ग्यारह वें दिन करने का विधान है। ब्राह्मण द्वारा ज्योतिष आधार पर बच्चे का नाम तय किया जाता है। बच्चे को शहद चटाकर सूर्य के दर्शन कराए जाते हैं। उसके नए नाम से सभी लोग उसके उत्तम स्वास्थ्य व सुख-समृद्धि की कामना करते हैं महर्षि याज्ञवल्क्य का भी यही मत है, लेकिन अनेक कर्मकाण्डी विद्वान इस संस्कार को शुभ नक्षत्र अथवा शुभ दिन में करना उचित मानते हैं। नामकरण संस्कार का सनातन धर्म में अधिक महत्व है। हमारे मनीषियों ने नाम का प्रभाव इसलिये भी अधिक बताया है क्योंकि यह व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। तभी तो यह कहा गया है राम से बड़ा राम का नाम हमारे धर्म विज्ञानियों ने बहुत शोध कर नामकरण संस्कार का आविष्कार किया। ज्योतिष विज्ञान तो नाम के आधार पर ही भविष्य की रूपरेखा तैयार करता है। जातकर्म के बाद नामकरण संस्कार किया जाता है। जैसे की इसके नाम से ही विदित होता है कि इसमें बालक का नाम रखा जाता है। बहुत से लोगों अपने बच्चे का नाम कुछ भी रख देते हैं जो कि गलत है। उसकी मानसिकता और उसके भविष्य पर इसका असर पड़ता है। जैसे अच्छे कपड़े पहने से व्यक्तित्व में निखार आता है उसी तरह अच्छा और सारगर्भित नाम रखने से संपूर्ण जीवन पर उसका प्रभाव पड़ता है। ध्यान रखने की बात यह है कि बालक का नाम ऐसा रखें कि घर और बाहर उसे उसी नाम से पुकारा या जाना जाए।

आयुर्वर्चोअभिवृद्धिश्च सिद्धिव्र्यवह्रतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभि:।।

(स्मृतिसंग्रह)

6- निष्क्रमण संस्कार

इस संस्कार का फल विद्वानों से आयु की वृद्धि बताया है- **निष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभि:।** ये संस्कार शिशु के जन्म के चौथे महीने में किया जाता है। निष्क्रमण का अर्थ होता है बाहर निकालना। सूर्य तथा चंद्रमा आदि देवताओं का पूजन कर शिशु को उनके दर्शन कराना इस संस्कार की मुख्य प्रक्रिया है। भगवान भास्कर के तेज तथा चन्द्रमा की शीतलता से शिशु को अवगत कराना ही इसका उद्देश्य है। हमारा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से बना है। जिन्हें पंचभूत कहा जाता है, इसलिए पिता इस संस्कार में इन देवताओं से बच्चे के कल्याण की प्रार्थना करते हैं। जगत् से शिशु की प्रगाढ़ता बढ़े तथा ब्रह्माजी की सृष्टि से वह अच्छी तरह परिचित होकर दीर्घकाल तक धर्म और मर्यादा की रक्षा करते हुए इस लोक का भोग करे इसके पीछे मनीषियों की शिशु को तेजस्वी तथा विनम्र बनाने की परिकल्पना होगी। उस दिन देवी-देवताओं के दर्शन तथा उनसे शिशु के दीर्घ एवं यशस्वी जीवन के लिये आशीर्वाद ग्रहण किया जाता है। तीन माह तक शिशु का शरीर

बाहरी वातावरण यथा तेज धूप, तेज हवा आदि के अनुकूल नहीं होता है इसलिये प्राय: तीन मास तक उसे बहुत सावधानी से घर में रखना चाहिए। इसके बाद धीरे-धीरे उसे बाहरी वातावरण के संपर्क में आने देना चाहिए। इस संस्कार का तात्पर्य यही है कि शिशु समाज के सम्पर्क में आकर सामाजिक परिस्थितियों से अवगत हो।

7- अन्नप्राशन संस्कार

माता के गर्भ में रहते हुए शिशु के पेट में गंदगी चली जाती है, जिससे उस शिशु में दोष आ जाते हैं। अन्नप्राशन संस्कार के माध्यम से उन दोषों का नाश हो जाता है- **अन्नाशमान्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुध्दयति।** जब शिशु 6-7 मास का हो जाता है और उसके दांत निकलने लगते हैं, पाचनशक्ति तेज होने लगती है, तब यह संस्कार किया जाता है। शुभ मुहूर्त में देवताओं का पूजन करने के बाद माता-पिता आदि सोने या चांदी की चम्मच से नीचे लिखे मंत्र को बोलते हुए शिशु को खीर चटाते हैं-

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुंचतो अंहस:।।
(अथर्ववेद 8/2/18)

इस संस्कार का उद्देश्य शिशु के शारीरिक व मानसिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करना है। अन्नप्राशन का स्पष्ट अर्थ है कि शिशु जो अब तक पेय पदार्थो विशेषकर दूध पर आधारित था अब अन्न जिसे शास्त्रों में प्राण कहा गया है उसको ग्रहण कर शारीरिक व मानसिक रूप से अपने को बलवान व प्रबुद्ध बनाए। तन और मन को सुदृढ़ बनाने में अन्न का सर्वाधिक योगदान है। शुद्ध, सात्विक एवं पौष्टिक आहार से ही तन स्वस्थ रहता है और स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। आहार शुद्ध होने पर ही अन्त:करण शुद्ध होता है तथा मन, बुद्धि, सबका पोषण होता है। इसलिये इस संस्कार का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। छठे मास में शुभ नक्षत्र एवं शुभ दिन देखकर यह संस्कार करना चाहिए। खीर और मिठाई से शिशु के अन्नग्रहण को शुभ माना गया है। अमृत: क्षीरभोजनम् हमारे शास्त्रों में खीर को अमृत के समान उत्तम माना गया है।

8-विद्यारम्भ संस्कार –

विद्यारम्भ संस्कार के क्रम के बारे में हमारे आचार्यो में मतभिन्नता है। कुछ आचार्यो का मत है कि अन्नप्राशन के बाद विद्यारम्भ संस्कार होना चाहिये तो कुछ चूड़ाकर्म के बाद इस संस्कार को उपयुक्त मानते हैं। वैसे तो अन्नप्राशन के बाद ही शिशु बोलना शुरू करता है। इसलिये अन्नप्राशन के बाद ही विद्यारम्भ संस्कार उपयुक्त लगता है। विद्यारम्भ का अभिप्राय बालक को शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से परिचित कराना है। प्राचीन काल में जब गुरुकुल की परम्परा थी तो बालक को वेदाध्ययन के लिये भेजने से पहले घर में अक्षर बोध कराया जाता था। माँ-बाप तथा गुरुजन पहले उसे मौखिक रूप से श्लोक, पौराणिक कथायें आदि का अभ्यास करा दिया करते थे ताकि गुरुकुल में कठिनाई न हो। हमारा शास्त्र विद्यानुरागी है। शास्त्र की उक्ति है सा विद्या या विमुक्तये

अर्थात् विद्या वही है जो मुक्ति दिला सके। विद्या अथवा ज्ञान ही मनुष्य की आत्मिक उन्नति का साधन है। शुभ मुहूर्त में ही विद्यारम्भ संस्कार करना चाहिये।

9- मुंडन (चूड़ाकर्म) संस्कार

चूड़ाकर्म या मुण्डन संस्कार कहलाता है। शिशु की उम्र के पहले वर्ष के अंत में या तीसरे, पांचवें या सातवें वर्ष के पूर्ण होने पर बच्चे के बाल उतारे जाते हैं, इसके बाद शिशु के सिर पर दही-मक्खन लगाकर स्नान करवाया जाता है व अन्य मांगलिक क्रियाएं की जाती हैं। इसका संस्कार का उद्देश्य शिशु का बल, आयु व तेज की वृद्धि करना है। सिर के बाल जब प्रथम बार उतारे जाते हैं नौ माह तक गर्भ में रहने के कारण कई दूषित किटाणु उसके बालों में रहते हैं। शिशु के बालों में चिपके कीटाणु नष्ट होते हैं इस संस्कार से बच्चे का सिर मजबूत होता है तथा बुद्धि तेज होती है। जिससे शिशु को स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है। इस संस्कार के पीछे शुचिता और बौद्धिक विकास की परिकल्पना हमारे मनीषियों के मन में होगी। मुंडन संस्कार से इन दोषों का सफाया होता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार इस संस्कार को शुभ मुहूर्त में करने का विधान है। वैदिक मंत्रोच्चारण के साथ यह संस्कार सम्पन्न होता है।

10- कर्णवेधन संस्कार

कर्णवेध संस्कार का अर्थ होता है कान को छेदना। शिशु के कान छेदें जाते हैं। इसलिए इसे कर्णवेधन संस्कार कहा जाता है। यह संस्कार जन्म के छह माह बाद से लेकर पांच वर्ष की आयु के बीच किया जाता था। मान्यता के अनुसार सूर्य की किरणें कानों के छेदों से होकर बालक-बालिका को पवित्र करती हैं और तेज संपन्न बनाती हैं। कर्णवेध संस्कार के बाद बालक को कुंडल तथा बालिक कान के आभूषण पहनाने चाहिए।
एक- आभूषण पहनने के लिए। दूसरा- कान छेदने से ज्योतिषानुसार राहु और केतु के बुरे प्रभाव बंद हो जाते हैं। जिससे मस्तिष्क तक जाने वाली नसों में रक्त का प्रवाह ठीक होने लगता है। इससे श्रवण शक्ति बढ़ती है और कई रोगों की रोकथाम हो जाती है।

हमारे मनीषियों ने सभी संस्कारों को वैज्ञानिक कसौटी पर कसने के बाद ही प्रारम्भ किया है। कर्णवेध संस्कार का आधार बिल्कुल वैज्ञानिक है। बालक की शारीरिक व्याधि से रक्षा ही इस संस्कार का मूल उद्देश्य है। प्रकृति प्रदत्त इस शरीर के सारे अंग महत्वपूर्ण हैं। कान हमारे श्रवण द्वार हैं। कर्ण वेधन से व्याधियां दूर होती हैं तथा श्रवण शक्ति भी बढ़ती है। इसके साथ ही कानों में आभूषण हमारे सौन्दर्य बोध का परिचायक भी है। यज्ञोपवीत के पूर्व इस संस्कार को करने का विधान है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुक्ल पक्ष के शुभ मुहूर्त में इस संस्कार का सम्पादन श्रेयस्कर है।

11- यज्ञोपवीत (उपनयन) संस्कार

प्रत्येक हिन्दू को यह संस्कार करना चाहिए। उप यानी पास और नयन यानी ले जाना। गुरु के पास ले जाने का अर्थ है उपनयन संस्कार। इस संस्कार को यज्ञोपवीत संस्कार कहते हैं। शास्त्रों के अनुसार इस संस्कार के द्वारा बालक को विधिवत् यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करना इस संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। जनेऊ में तीन सूत्र होते हैं। ये तीन देवता- ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रतीक हैं। इस संस्कार के द्वारा बालक को गायत्री जप, वेदों का अध्ययन आदि करने का अधिकार प्राप्त होता है।

यज्ञोपवीत अथवा उपनयन बौद्धिक विकास के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार है। धार्मिक और आधात्मिक उन्नति का इस संस्कार में पूर्णरूपेण समावेश है। हमारे मनीषियों ने इस संस्कार के माध्यम से वेदमाता गायत्री को आत्मसात करने का प्रावधान दिया है। आधुनिक युग में भी गायत्री मंत्र पर विशेष शोध हो चुका है। गायत्री सर्वाधिक शक्तिशाली मंत्र है।

प्रजापति ने स्वाभाविक रूप से इसका निर्माण किया है। यह आयु को बढ़ाने वाला, बल और तेज प्रदान करने वाला है। इस संस्कार के बारे में हमारे धर्मशास्त्रों में विशेष उल्लेख है। प्राचीन काल में जब गुरुकुल की परम्परा थी उस समय प्राय: आठ वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न हो जाता था। इसके बाद बालक विशेष अध्ययन के लिये गुरुकुल जाता था। यज्ञोपवीत से ही बालक को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी जाती थी जिसका पालन गृहस्थाश्रम में आने से पूर्व तक किया जाता था। इस संस्कार का उद्देश्य संयमित जीवन के साथ आत्मिक विकास में रत रहने के लिये बालक को प्रेरित करना है। आज भी यह परंपरा है। इस संस्कार से शिशु को बल, ऊर्जा और तेज प्राप्त होता है। साथ ही उसमें आध्यात्मिक भाव जागृत होता है।

12- वेदारंभ संस्कार

उपनयन संस्कार हो जाने के बाद बालक को वेदों का अध्ययन करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति को वेदों का ज्ञान दिया जाता है। इस संस्कार के अंतर्गत निश्चित समय शुभ मुहूर्त देखकर बालक की शिक्षा प्रारंभ की जाती है। इस संस्कार का मूल उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना है। पूर्व में इस संस्कार के बाद बालक को गुरुकुल भेज दिया जाता था, जहां वह अपने गुरु के संरक्षण में वेदों व अन्य शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करता था।

ज्ञानार्जन से सम्बन्धित है यह संस्कार। वेद का अर्थ होता है ज्ञान के माध्यम से बालक अब ज्ञान को अपने अन्दर समाविष्ट करना शुरू करे यही अभिप्राय है इस संस्कार का। शास्त्रों में ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई प्रकाश नहीं समझा गया है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह संस्कार मनुष्य के जीवन में विशेष महत्व रखता था। यज्ञोपवीत के बाद बालकों को वेदों का अध्ययन एवं विशिष्ट ज्ञान से परिचित होने के लिये योग्य आचार्यो के पास गुरुकुलों में भेजा जाता था। आचार्य अपने शिष्यों को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने एवं संयमित जीवन जीने की प्रतिज्ञा कराते थे तथा उसकी परीक्षा लेने के बाद ही वेदाध्ययन कराते थे। हमारे चारों वेद ज्ञान के अक्षुण्ण भंडार हैं।

13- केशांत संस्कार

केशांत : केशांत का अर्थ है बालों का अंत करना, उन्हें समाप्त करना। वेदारंभ संस्कार में बालक गुरुकुल में रहते हुए वेदों का अध्ययन करता है। उस समय वह ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करता है तथा उसके लिए केश और श्मश्रु (दाड़ी) व जनेऊ धारण करने का विधान है। गुरुकुल में वेदाध्ययन पूर्ण कर लेने पर आचार्य के समक्ष यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। वस्तुत: यह संस्कार गुरुकुल से विदाई लेने तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का उपक्रम है। वेद-पुराणों एवं विभिन्न विषयों में पारंगत होने के बाद ब्रह्मचारी के समावर्तन संस्कार के पूर्व बालों की सफाई की जाती थी तथा उसे स्नान कराकर स्नातक की उपाधि दी जाती थी। केशान्त संस्कार शुभ मुहूर्त में किया जाता था। इसके बाद श्मश्रु वपन (दाड़ी बनाने) की क्रिया संपन्न की जाती है, इसलिए इसे श्मश्रु संस्कार भी कहा जाता है। यह संस्कार सूर्य के उत्तरायण होने पर ही किया जाता है। कुछ शास्त्रों में इसे गोदान संस्कार भी कहा गया है। शिक्षा प्राप्ति के पहले शुद्धि जरूरी है, ताकि मस्तिष्क ठीक दिशा में काम करें।

14- समावर्तन संस्कार

समावर्तन का अर्थ है फिर से लौटना। समावर्तन विद्याध्ययन का अंतिम संस्कार है। पढ़ाई पूरी हो जाने के बाद ब्रह्मचारी अपने गुरु की आज्ञा से अपने घर लौटता है। इसीलिए इसे समावर्तन संस्कार कहा जाता है इसमें सुगन्धित पदार्थो एवं औषधादि युक्त जल से भरे हुए वेदी के उत्तर भाग में आठ घड़ों के जल से स्नान करने का विधान है। इसलिए इसे वेदस्नान संस्कार भी कहते हैं। इसके बाद ब्रह्मचारी मेखला व दण्ड को छोड़ देता था जिसे यज्ञोपवीत के समय धारण कराया जाता था। इस संस्कार के बाद उसे विद्या स्नातक की उपाधि आचार्य देते थे। इस उपाधि से वह सगर्व गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अधिकारी समझा जाता था। सुन्दर वस्त्र व आभूषण धारण करता था तथा आचार्यो एवं गुरुजनों से आशीर्वाद ग्रहण कर अपने घर के लिये विदा होता था। आश्रम या गुरुकुल से शिक्षा प्राप्ति के बाद व्यक्ति को फिर से समाज में लाने के लिए यह संस्कार किया जाता था। इसका आशय है ब्रह्मचारी व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक रूप से जीवन के संघर्षों के लिए तैयार किया जाना।

15- विवाह संस्कार

विवाह का अर्थ है पुरुष द्वारा स्त्री को विशेष रूप से अपने घर ले जाना। सनातन धर्म में विवाह को जन्म-जन्मांतर का बंधन माना गया है। यह धर्म का साधन है। विवाह के बाद पति-पत्नी साथ रहकर धर्म का पालन करते हुए जीवन यापन करते हैं। विवाह के द्वारा सृष्टि के विकास में योगदान दिया जाता है। विवाह उचित उम्र में विवाह करना जरूरी है। विवाह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। इसके अंतर्गत वर और वधू दोनों साथ रहकर धर्म के पालन का संकल्प लेते हुए विवाह करते हैं। विवाह के द्वारा सृष्टि के विकास में योगदान ही नहीं दिया जाता बल्कि व्यक्ति के आध्यात्मिक और मानसिक विकास के लिए भी यह जरूरी है। यज्ञोपवीत से समावर्तन संस्कार तक ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का हमारे शास्त्रों में विधान है। वेदाध्ययन के बाद जब युवक में सामाजिक परम्परा निर्वाह करने की क्षमता व परिपक्वता आ जाती थी तो उसे गृर्हस्थ्य धर्म में

प्रवेश कराया जाता था। लगभग पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन करने के बाद युवक परिणय सूत्र में बंधता था।

विवाह का यही फल बताया गया है-

ब्राह्माद्युद्वाहसंभूत: पितृणां तारक: सूत:।
विवाहस्य फलं त्वेतद् व्याख्यातं परमर्षिभि:।।

(स्मृतिसंग्रह)

16-अंत्येष्टि संस्कार

इसका अर्थ है अंतिम यज्ञ। आज भी शवयात्रा के आगे घर से अग्नि जलाकर ले जाई जाती है। इसी से चिता जलाई जाती है। आशय है विवाह के बाद व्यक्ति ने जो अग्नि घर में जलाई थी उसी से उसके अंतिम यज्ञ की अग्नि जलाई जाती है। मृत्यु के साथ ही व्यक्ति स्वयं इस अंतिम यज्ञ में होम हो जाता है। हमारे यहां अंत्येष्टि को इसलिए संस्कार कहा गया है कि इसके माध्यम से मृत शरीर नष्ट होता है। अंत्येष्टि संस्कार को पितृमेध, अन्त्यकर्म व श्मशानकर्म आदि भी कहा जाता है। आत्मा में अग्नि का आधान करना ही अग्नि परिग्रह है। धर्म शास्त्रों की मान्यता है कि मृत शरीर की विधिवत् क्रिया करने से जीव की अतृप्त वासनायें शान्त हो जाती हैं। हमारे शास्त्रों में बहुत ही सहज ढंग से इहलोक और परलोक की परिकल्पना की गयी है। जब तक जीव शरीर धारण कर इहलोक में निवास करता है तो वह विभिन्न कर्मो से बंधा रहता है। प्राण छूटने पर वह इस लोक को छोड़ देता है। उसके बाद की परिकल्पना में विभिन्न लोकों के अलावा मोक्ष या निर्वाण है। मनुष्य अपने कर्मो के अनुसार फल भोगता है। इसी परिकल्पना के तहत मृत देह की विधिवत क्रिया होती है।

!! संस्कृत का उदय !!